दो शब्द

राजधानी में हिन्दी की सेवा करने के नाते मेरा तथा थोड़े से परिचित साथियों का सदैव यह दृष्टिकोण रहा है कि हिन्दी साहित्य की समृद्धि के लिए दिवंगत साहित्यकारों के प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्य का अध्ययन करके उनकी विशिष्ट शैली के आधार पर नये तथा पुरातन तत्त्वों के सम्मिश्रण द्वारा प्रभावशाली साहित्य का सृजन होना चाहिए। इसी भावना से अभिप्रेरित होकर गत कई वर्ष पूर्व एक साहित्य-परिषद् की स्थापना की गई थी और उसके अन्तर्गत स्व० जयशंकर प्रसाद, एवं स्व० मुंशी प्रेमचन्द जी का स्मृति-सप्ताह राजधानी में विभिन्न स्थानों पर मनाया गया था। इस योजना का लक्ष्य यही था कि दिवंगत साहित्यकारों की कृतियों का अध्ययन करके हिन्दी साहित्य तथा अन्य भाषाओं के साहित्य को समृद्ध किया जाता। इस योजना के अन्तर्गत केवल हिन्दी साहित्यकारों के श्राद्ध-दिवस मनाने का ही निश्चय नहीं था वरन् समस्त देशी भाषाओं के साहित्यकारों का। इस योजना में हम सफल नहीं हो सके। कारण का इंगित करना साधारण बात नहीं है। इसी सिलसिले में हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी से साहित्याचार्य पद्मसिंह शर्मा का २०वीं स्मृति-दिवस मनाने का निश्चय किया गया था लेकिन उनका सहयोग वक्त पर न मिल सका; तब यदि राजधानी के प्रसिद्ध कवि तथा लेखक श्री क्षेमचन्द्र सुमन का सक्रिय सहयोग न मिलता तो इस दिशा में कोई भी काम साकार नहीं हो पाता।

स्व० पद्मसिंह शर्मा एक विशिष्ट शैली, के वाहक साहित्यकार थे। और उन्होंने जीवनी, संस्मरण आदि लिख कर हिन्दी साहित्य को अपूर्व गौरव प्रदान किया था। इससे भी आगे वे तुलनात्मक समालोचना के पथ-प्रदर्शक महारथी थे।

अन्त में अपने सहयोगी सर्व श्री महावीर अधिकारी, हरिदत्त शर्मा तथा बरुआ का भी हार्दिक धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके सक्रिय सहयोग के बिना यह कार्य दुष्कर था। जिन साथियों से इस आयोजन में आर्थिक सहायता उपलब्ध हुई है, उनके आगे मैं नत-मस्तक हूँ।

फतहचन्द शर्मा
'आराधक'
संयोजक

२१२३ मुकीमपुरा
सब्जी मण्डी, दिल्ली

ता॰

वक्तव्य

समालोचक-मूर्धन्य पंडित पद्मसिंह शर्मा के नाम से समस्त हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित हैं। उनकी लेखन-पटुता, समालोचन-चातुरी तथा गहन विद्वत्ता की छाप द्विवेदी-युगीन साहित्य के पन्ने-पन्ने पर पत्थर की लकीर के समान अङ्कित है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे साहित्य के इतिहासकारो ने शर्मा जी की सेवाओं का मूल्यांकन यथोचित्त रूपेण नहीं किया। अभी तक चाहिए तो यह था कि शर्मा जी की बहुमुखी प्रतिभाओं पर प्रकाश डालने वाले अनेक ग्रन्थ हिंदी मे प्रकाशित होते, किंतु ऐसा नही हो सका। प्रस्तुत पुस्तिका इसी दिशा मे एक विनम्र सांकेतिक प्रयत्न है।

हमारी इच्छा तो यह थी कि यह कार्य शर्मा जी के समर्थ शिष्य पत्रकार-शिरोमणि पडित बनारसीदास चतुर्वेदी के सुदृढ़ और समर्थ कर-कमलो द्वारा सम्पन्न होता। किंतु कई अनिवार्य एव विषम परिस्थितियों से आक्रात होने के कारण श्री चतुर्वेदी जी इस कार्य को इस विशिष्ट अवसर पर नहीं कर सके, ऐसी स्थिति मे यह कार्य समिति के सयोजको ने मेरे निर्बल कंधों पर डाला। यद्यपि ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए पर्याप्त समय अपेक्षित था, किंतु फिर भी केवल दो-तीन दिन की दौड-धूप मे जो कुछ हो सका, वह आपके हाथो मे है।

मैंने यह पूर्ण प्रयत्न किया है कि इसमे शर्मा जी के कृतित्व की बहुमुखी दिशाओं पर प्रकाश डालने वाली सामग्री प्रस्तुत की जाय। इसमे मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ इसका निर्णय तो सहृदय पाठक ही करेंगे। मैं तो इसे 'अभावे शालि चूर्ण वा' समझकर सतोष अनुभव कर रहा हूँ।

इस प्रसग मे राजधानी की प्रतिष्ठित प्रकाशन सस्था मेसर्स आत्माराम एण्ड सस के संचालक श्री रामलाल पुरी का मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ कि जिन्होंने कागज को इस मँहगाई के दिनों मे भी इस पुस्तिका के प्रकाशन का समस्त भार अपने ऊपर वहन किया। यदि हमें इस समय उनका कृपा-पूर्ण सहयोग न प्राप्त होता तो संभवतः यह पुस्तिका पाठको के हाथों मे न पहुँच पाती। उनका यह सद्भावनापूर्ण सत्सहयोग हिंदी के अन्य प्रकाशको के लिए अनुकरणीय है।

३६७१ हाथीखाना
पहाड़ी धीरज, दिल्ली

क्षेमचन्द्र 'सुमन'
(सम्पादक)

पहला भाग : : जीवनी

समालोचक-शिरोमणि पं० पद्मसिंह शर्मा

(लेखक : प्रो० हरिदत्त शर्मा शास्त्री)

संसार पट कुविन्दं जग दण्ड कलश कुलालमीशानम् ।
सर्ग प्रलय सितासित कुसुम स्रङ् मालिनं वन्दे ।।

सुगृहीत नामधेय, समालोचक-शिरोमणि श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा का जन्म सम्वत् १६३३ फाल्गुन शुदि द्वादशी रविवार को हुआ था। आपके पिता श्रीयुत चौ० उमरावसिंह जी शर्मा नम्बरदार गॉव (नायक नगला) के मुखिया थे। आपका पैतृक पेशा जमींदारी व काश्तकारी था, आमदनी अच्छी थी, विद्या से प्रेम था, सन्तान को शिक्षित बनाने का विशेष ध्यान था, अतः मकान पर दो पण्डित रक्खे गये, एक मौलवी साहब, दूसरे संस्कृत के अध्यापक। हमारे चरित्रनायक ने थोडे ही काल मे उनमे सब कुछ ले लिया। विद्या की प्यास भडकी इटावा पहुचे, वहाँ सन् १८६४ मे श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के शिष्य श्री पं० भीमसेन जी वेदाचार्य से अष्टाध्यायी का अध्ययन किया। फिर वहां से काशी पहुँचे। श्री १०८ पूज्यपाद ऋषि-कल्प पं० काशीनाथ जी शास्त्री से दर्शनादि का अध्ययन किया।

यह बात सन् १८६४ की है। १६०४ मे आपने गुरुकुल कांगडी में अध्यापन कार्य किया। उस समय श्रीयुत महात्मा मुन्शीराम जी ने पं० रुद्रदत्त जी शर्मा सम्पादकाचार्य के सम्पादकत्व मे "सत्यवादी" निकाला था। हमारे चरित्रनायक भी तब वहीं थे। सम्पादन तथा हिन्दी-लेखन का "श्री गणेश" यही से हुआ। १६०८ के आरम्भ मे 'परोपकारी' के सम्पादक होकर आप अजमेर चले गये। वहाँ आपने 'अनाथ रक्षक' का भी साथ-साथ सम्पादन किया। १६०६ से लेकर १६१७ तक आप महाविद्यालय ज्वाला-पुर मे कार्य करते रहे। "भारतोदय" का सम्पादन भी आपने किया, जो मासिक से साप्ताहिक हो गया था। ग्राहक संख्या खूब बढ गई थी। कुछ काल तक आप महाविद्यालय-सभा के मन्त्री भी रहे, साथ-साथ पढाते तो रहे ही। सन् १६१० मे आपको पितृ-वियोग-विपत्ति का वज्र प्रहार सहना पडा। घर का सारा भार आप पर आ गया—म० वि० को छोडकर जाना ही पडा। महा-

विद्यालय की हित-चिन्ता आप सर्वदा करते ही रहे। जब महाराजा श्री यशवन्त राव का इन्दौर में राज्याभिषेक हुआ तब आपको सम्मानपूर्वक ५००) भेंट किये गये तो वहाँ भी आपने महाविद्यालय को न भुलाया।

विद्यालय को भी एक अच्छी रकम दिलवाई, यदि सम्पादक जी ने कहीं निभकर काम किया या डटकर रहे या निर्वाह-मात्र लेकर काम किया तो सिर्फ महाविद्यालय में ही। नौकरी से आपको हार्दिक घृणा थी, स्वाभाविक द्वेष था। संवत् १९७५ विक्रमी मे आप श्री बा० शिवप्रसाद गुप्त जी के अनुरोध से ज्ञान मण्डल काशी में पहुँचे, वहाँ उक्त मण्डल से प्रकाशित होने वाली पुस्तको का सम्पादन करते रहे। श्री प्रोफेसर रामदास जी गौड़ एम. ए. तथा श्री लक्ष्मणनारायण जी गर्दे उन दिनों मण्डल के कार्यकर्त्ताओं मे से अन्यतम थे। बिहारी की सतसई भूमिका भाग का प्रथम संस्करण भी यहीं से प्रकाशित हुआ। आश्विन संवत् १९७७ वि० में मुरादाबाद मे होने वाले संयुक्त प्रान्तीय षष्ठ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्मानित सभापति पद को सुशोभित किया। इस ही वर्ष आपको स्नेहमयी माताजी का भी वियोग दु.ख सहना पडा। सवत् १९८० मे बिहारी की सतसई पर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक आपको मिला। न जाने कहां-कहां से आप को बुलावे आये, पर आप कहीं न गये।

मालवीय जी के कई बार कहने पर भी आप हिन्दू यूनिवर्सिटी में कार्य करने न पहुँचे, किन्तु दैवी चक्र बना। महात्मा मुन्शीराम के अनुरोध से गुरुकुल कांगडी जाना पडा। उत्तर दक्षिण ध्रुव का अभूत पूर्व मेल हो गया। इस प्रकार सम्पादक जी डेढ़ वर्ष तक काङ्गडी में हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर रहे। साथ ही सम्वत् १९८५ में आपने मुजफ्फरपुर अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद को सुशोभित किया। पर प्रोफेसरी के फन्दे मे सम्पादक जी कब फँसने वाले थे, मनोवृत्ति में जुगुप्सा आई और यह भी छोड दी। स्वतन्त्र हो गये। १९८६ में 'पद्म पराग' तथा 'प्रबन्ध मंजरी का प्रकाशन किया। सन् ३२ में हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सदस्यों के अनुरोध से श्रीयुत सम्पादक जी का "हिन्दी उर्दू हिन्दोस्तानी" विषय पर निबन्ध पढ़ा गया। बस यही सम्पादक जी की अन्तिम और अनूठी कृति है। सम्पादक जी कहते थे कि जल्दी में लिखा है, छपाते समय दुबारा भूमिका सहित बढाकर इसे छपायेंगे पर उस अचिन्त्य शक्ति को यह कब सह्य था।

हिन्दी प्रेमियों का यह कहाँ सौभाग्य था यह लेख भूमिका-[illegible]

भुवन भास्कर कर फैलाकर किसी को जगा और किसी को थपकियाँ देकर सुला रहे थे तब उन सोने वाले या कर-सोपान के सहारे सूर्य-मंडल में जाने वालों में सम्पादक जी भी एक थे। वे गये और बस, उनकी याद सहृदयों को खून के आँसू रुलाया करेगी। उनका व्यवहार उनका सौहार्द, उनकी आतिथेयी, उनका सौजन्य याद आया करेगा और हम सिर धुना करेंगे। सम्पादक जी का जन्म त्यागी ब्राह्मणों में हुआ था पर जाति-जन्म का जटिल जाल उन्हें बांध न सका था। उनका हृदय विशाल था। वे पक्के और सच्चे आर्य थे, पर अश्रद्धालु या भक्ति-विमुख न थे। सहृदयता की मूर्ति थे, समालोचना करना उनका स्वभाव-सा था, पर परिहास-रस में पगी हुई उनकी उक्तियाँ और वाक्यावली रोते को हँसाती थीं—उन्हे संगीत और काव्य से बड़ा प्रेम था, कविता सुनने का मर्ज था। जब वे गुरुकुल काङ्गडी से छुट्टी के दिनों में आते थे, तो ज्वालापुर महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों से सुन्दर सुन्दर सूक्तियाँ सुना करते थे। और नई-नई याद कराया करते थे, एक बार एक व्यक्ति ने उनके विषय में बहुत कुछ बुरा-भला पत्र में लिखा तो आपने उत्तर में यह श्लोक लिख भेजा—

> "अस्मानवेहि कल मानलमाहतानाम्
> येषां प्रचण्ड मुसलैरवदान तैव।'
> स्नेहं विमुच्य सहसा खलतां प्रयान्ति
> ये स्वल्प पीडन वशान्न वय तिलास्ते ॥"

बस और कुछ न लिखा, तीन बार वे स्वय क्षमा माँगने आ पहुँचे। सम्पादक जी को मौके पर फबने वाली संस्कृत, उर्दू, फारसी की कितनी सूक्तियाँ याद थीं इसका पता चलना बडा कठिन था। उनकी स्मरण-शक्ति भी गजब की थी, यदि भगवान् उन्हें कुछ दिन की और आयु देता तो हिन्दी प्रेमियों को अनेक अनमोल ग्रन्थ-रत्न प्राप्त होते।

दूसरा भाग :: संस्मरण

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा

लेखक : श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

उन्नीस वर्ष हो गये (आचार्य प० पद्मसिह शर्मा का स्वर्गवास ७ अप्रैल सन् १९३२ को हुआ था) और इन उन्नीस वर्षों में भी हम लोग अपने प्रमाद के कारण उनका कोई भी स्मारक नही बना सके। स्मारक बनाना तो रहा दूर, उनके ग्रन्थो का पुनर्मुद्रण भी नही करा सके। 'पद्म-पराग' (द्वितीय भाग) जहाँ का तहाँ पडा हुआ है, उसके प्रथम भाग के द्वितीय सस्करण की नौवत अभी तक नही आई, जीवन-चरित्र भी नही लिखा जा सका। यही नही, हम उन्हे भूलते भी जा रहे है। पिछले १९ वर्ष मे अध्यापको तथा विद्यार्थियो की जो पीढी तैयार हुई है, उसे आचार्य प० पद्मसिह जी की गद्यशैली तथा उनकी साहित्यिक तन्मयता का बहुत ही कम पता होगा। एक प्रोफेसर नामधारी महानुभाव ने जब कहा "वही पद्मसिहजी न, जो उर्दू कविताएं अपने लेखो मे उद्धृत किया करते थे?" तब उनके अल्प ज्ञान तथा अपने अक्षम्य अपराध का अन्दाज हम लगा सके।

यह दुर्दशा है उस महान् साहित्यिक की स्मृति की, जिसने बीसियो ही लेखको को लेखक बनाया था, पचासो ही कवियो को प्रोत्साहित किया था, सैकडो ही सभा-समितियो, उत्सवो तथा अधिवेशनो को अपने विस्तृत ज्ञान, सरस वार्तालाप तथा सजीव व्यक्तित्व से लाभान्वित किया था और जो जीवन-पर्यन्त दूसरो की कीर्ति-रक्षा के लिये चिन्तित रहा था। स्वर्गीय शर्मा जी की स्मृति में तीन पत्रो के विशेषाङ्क अवश्य निकले थे—'विशाल भारत', 'सैनिक' तथा 'त्यागी' के, और उन्हे पढकर आज भी हम लोग यह जान सकते है कि उन्होने कितने हिन्दी-लेखको तथा कवियो को प्रभावित किया था।

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी ने 'हस' मे लिखा था—

"शर्माजी जितने बडे साहित्य-सेवी थे, उससे कही बडे मनुष्य थे। आपसे मिलकर कभी जी नही भरता था। नये लेखकों को आप वह प्रोत्साहन देते थे, जो माता अपने लटपटे बालक को देती है। मेरे ऊपर तो उनकी असीम कृपा थी। 'सेवा-सदन' उपन्यास-क्षेत्र मे मेरा पहला प्रयास था।

शर्माजी ने जिस तरह दिल खोलकर दाद दी, वह मैं भूल नहीं सकता। उस समय उनकी कठोर आलोचना ने मेरा अन्त कर दिया होता। उसके बाद जब-जब मुझे उनसे मिलने का सुअवसर मिला, इस तरह टूट कर गले लगाते थे कि चित्त उनके सौजन्य पर पुलकित हो उठता था। सरल जीवन और ऊँचे विचार की ऐसी मिसाल मुशकिल से मिलेगी। आप में नवीन और प्राचीन का अभूतपूर्व मेल होगया था। क्या सस्कृत, क्या हिन्दी, क्या उर्दू, क्या फारसी—आप इन सभी साहित्यो के ज्ञाता थे। अकबर मरहूम के तो आप आशिक ही कहे जा सकते है। मैंने आपकी ज़बान से अकबर की सैकडो सूक्तियाँ सुनी हैं। आप उन पर मस्त हो जाते थे। हिन्दी मे आप एक खास शैली के जन्मदाता हैं—जिसमे चुलबुलापन है, शोखी है, प्रवाह है और उसके साथ ही गाम्भीर्य भी। उनका पाण्डित्य उनके काबू मे है। वह उस पर शहसवार की भाँति सवार होते हैं। उसकी लगाम ढीली नहीं करते, उसे बहकने नहीं देते। कौन जानता था कि हिन्दी-साहित्य का वह सूर्य अपने साहित्य-जीवन के मध्याह्न मे यो अस्त हो जायगा!"

एक बार जब पडित पद्मसिहजी ने महाकवि अकबर की एक सूफियाना कविता की दाद एक लम्बा खत लिखकर दी, तो अकबर साहब फडक गये। उन्होने अपने पत्र मे लिखा —

"मुझको आज तक इसकी दाद नहीं मिली थी। दाद एक तरफ, एक साहब ने मुझसे फरमाया था कि 'मैं इस किते के मानी नही समझा।' वह साहब बहुत ज़ी-इल्म (विद्वान्) और खुद साहिबे-सखुन (कवि) थे, मैं खामोश हो रहा। खुदा ने आपके लिये यह बात रखी थी कि इसका मतलब समझिये और दाद दीजिये। असल यह है कि आप साहिबे-दिल हैं। आपने अपनी ज़बान और मजहब मे फिलसफा पढा है और मजाके-तसव्वफ और हकपरस्ती आप मे पैदा हो गई है। खुदा जाने किसने-किसने किन-किन मवाके (अवसर) पर किन अशआर की दाद दी, लेकिन यह तफसीली नज़र इस वज्द और लज़्ज़त के साथ ग़ालिबन किसी ने नही की "

"आपकी क़ाबलियत और सुख़नफहमी ने मुझको आपका आशिक़ बना दिया है, मेरे लिए दुआ फरमाया कीजिए, अब बजुज़ यादे-खुदा और जिक्रे आख़ेरत के कुछ जी नही चाहता, लेकिन इस रग के सच्चे साथी नहीं मिलते, आप बहुत दूर हैं।" इसी प्रकार सस्कृत के महान् विद्वान् और बाणभट्ट की शैली पर गद्य लिखने वाले प० हृषीकेश भट्टाचार्य शास्त्रीजी की सस्कृत रचनाओ के विषय मे लिखते हुए शर्माजी ने जिस गुणग्राहकता का परिचय दिया

था उससे स्वय शास्त्रीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। शास्त्रीजी के बडे-से-बड शिष्य, उदाहरणार्थ महामहोपाध्याय श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण, श्री पञ्चानन तर्करत्न, महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन प्रभृति, जिस पुण्य कार्य को न कर सके उसे स्वय प० पद्मसिंहजी ने कर दिखाया! अर्थात् उन्होने शास्त्रीजी द्वारा सम्पादित 'विद्योदय' के पुराने लेखो का सग्रह और सम्पादन करके 'प्रबन्ध-मजरी' के नाम से प्रकाशित कर दिया। वही वास्तव में उनका सच्चा श्राद्ध था।

इसी प्रकार ब्रज-कोकिल प० सत्यनारायण कविरत्न को भी स्वर्गीय शर्माजी ने बहुत प्रोत्साहित किया था। कविरत्नजी की 'सरोजिनी षट्पदी' नामक कविता की जो प्रशसा उन्होने की थी, उसे कविरत्नजी ने अपने सार्टीफिकेट के लिफाफे मे रख छोडा था।

कविवर स्वर्गीय नाथूरामजी शकर शर्मा के तो वे अनन्य भक्त थे। अपने एक पत्र मे उन्होने मुझे लिखा था —

"मैं अभी हरदुआगज शकरजी से मिलने गया था ·· · आज ही मकान पर लौटा हूँ। हिन्दी-लेखकों के जीवन-चरित बेशक लिखे जाने चाहिए। आप पाठकजी (प० श्रीधर पाठक) की जीवनी लिखिये और मैं शकरजी की लिखूँगा। मुझे जीवनी लिखनी नहीं आती। इस कूचे मे कभी क़दम रखा ही नहीं, पर शंकरजी का पवित्र चरित्र लिखकर अपनी कलंकित क़लम के पापों का प्रायश्चित्त करूँगा। परमात्मा मुझे शक्ति दे कि मैं यह काम कर सकूँ। एवमस्तु।" पूज्य शकरजी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अनुराग-रत्न' 'काव्य-कानन-केसरी' प० पद्मसिंहजी को ही समर्पित की थी।

अनेक मित्रो ने, जिनमे प० पद्मसिहजी भी सम्मिलित थे, बहुत आग्रह किया कि 'अनुराग-रत्न' का समर्पण किसी धनी-मानी महानुभाव को किया जाय, जिससे कुछ आर्थिक लाभ भी हो, पर कवि जी ने यह बात एक क्षण के लिए भी स्वीकार न की। उन्होने यही कहा **"मै अपना प्रचुर परिश्रम एक काव्य-कलाविद को ही अर्पण करूंगा और मेरी राय मे पं० पद्मसिंहजी शर्मा इसके लिए सर्वश्रेष्ठ हैं।"**

कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त को उन दिनो जब कि वे 'भारत-भारती' लिख रहे थे, पडित पद्मसिंह ने काफी प्रोत्साहित किया था।

बन्धुवर हरिशङ्करजी शर्मा, श्रीरामजी शर्मा और इन पक्तियो का लेखक, हम तीनो तो शर्माजी के इतने ऋणी है कि जीवन-भर उऋण नही हो सकते। हम लोगो के लिए तो वे पितृ-तुल्य ही थे।

बहुत-से लोगो को इस बात का पता न होगा कि हमारे राष्ट्रपति श्रद्धेय

बाबू राजेन्द्रप्रसादजी का प्रथम लेख सम्भवत प० पद्मसिंह जी ने ही 'भारतोदय' मे छापा था । पूज्य बाबूजी का १४ जनवरी सन् १९११ का एक पत्र, जो उन्होने शर्माजी को भेजा था, अभी सुरक्षित है । उसे हम यहा उद्धृत करते है —

७, १ बेचू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता
तारीख १४, शु० पौष १९६७

परम पूज्यनीय श्रद्धेयवर,

प्रणतयः सादरम् सस्नहेम् !

कृपा-पत्र पाकर अत्यन्त अनुग्रहीत हुआ । आपने जो मुझे लोकोत्तर विरुदावलियों से विभूषित किया है यह केवल आपकी कृपा और दाक्षिण्य का अविकल प्रमाण है । मैं तो स्वय अपने को अत्यन्त अल्पज्ञ जानकर आपकी सहायता का सदैव अभिलाषी हूँ । बात असल यह है कि मुझे इतने शब्दो से भूषित कर आप सहायता देने के परिश्रम से अलग नहीं हो सकते । 'सरस्वती' मे जो लेख देने की आज्ञा की गई,सो अनुल्लघनीय न होने पर भी लेख के असामर्थ्योपहत होने से विलम्बसाध्य होगी । 'सतसई संहार' लिखकर आपने 'सरस्वती' के पाठकों का जो आशीर्वाद ग्रहण किया है सो उसकी पुष्टि मेरे-से अल्पज्ञ के लेख से कैसे हो सकती है । प्रथम तो ऐसा विषय नहीं सूझता जिस पर हिन्दी-रसिको का अनुराग हो, द्वितीयतः हिन्दी लेख मे भी सामर्थ्य नहीं । आप कुछ विषय निर्देश करें तो कुछ यत्न हो । समाज-संशोधन वाला लेख आपको इतना पसन्द होगा, यह मुझे कभी धारणा नही थी । यदि उधर 'भारतोदय' कृतार्थ हुआ तो इधर मैं भी कृतार्थ हुआ । आशा है अपने समुचित उपदेशों से आप मुझे सदा कृतार्थ करते रहेंगे ।

आपका परम सेवक
राजेन्द्र

अधिक उद्धरण देने की आवश्यकता नही । जो व्यक्ति एक साथ ही प० हृषीकेश भट्टाचार्य और महाकवि अकबर, श्रद्धेय बाबू राजेन्द्र प्रसाद और राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द और सत्यनारायण इन सबको प्रोत्साहित कर सकता था—योग्यतापूर्वक इन सबकी रचनाओ की दाद दे सकता था — निस्सदेह एक असाधारण विद्वान् तथा सहृदयशिरोमणि होना चाहिये ?

अब प्रश्न यह है कि उन सहृदय-शिरोमणि प० पद्मसिह जी की कीर्ति-रक्षा के लिए क्या किया जाय ?

हमारी समझ मे सर्वोत्तम कार्य तो यह होगा कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

उनकी समस्त रचनाओ को अपने यहा से प्रकाशित करे । इसके लिए वह स्वर्गीय शर्माजी के सुपुत्र भाई रामनाथ शर्मा से पत्र-व्यवहार कर सकता है। हमारा विश्वास है कि हमारे इस प्रस्ताव का समर्थन श्रद्धेय प० अम्बिका-प्रसाद जी वाजपेयी, बन्धुवर वियोगी हरि जी, कविवर श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी, श्री प० अमरनाथ जी झा, श्रद्धेय पराडकर जी, पूज्य टडन जी तथा सम्मेलन के अन्य सभापतियो द्वारा हो जायगा ।

दूसरा काम है स्वर्गीय शर्मा जी के जीवन-चरित्र के लिखने का और इसे हम स्वय एक वर्ष के भीतर लिख देना चाहते है ।

'पद्म-पराग' (द्वितीय भाग) के सम्पादन का कार्य भी तुरन्त हाथ में लिया जाना चाहिये । यदि सम्मेलन स्वीकार करे तो स्वर्गीय शर्माजी के सौ-सवा सौ चुने हुए पत्रो का सग्रह भी उसे यथा-सम्भव शीघ्र ही दिया जा सकता है।

हमारा विश्वास है कि स्वर्गीय शर्मा जी की समस्त रचनाओ के प्रकाशित होने पर ही हम लोग उनकी साहित्य-सेवा का अनुमान लगा सकेंगे । पर जैसा कि स्व० प्रेमचन्द जी ने कहा था 'शर्मा जी जितने साहित्य-सेवी थे उससे कहीं बड़े मनुष्य थे' सो उनके असाधारण मनुष्यत्व को प्रकट करने के लिए जीवन-चरित्र का प्रकाशित होना अनिवार्यत आवश्यक है । अनेक झझटो मे व्यस्त रहने के कारण हम इस श्राद्ध को अभी तक नही कर सके । तदर्थ हम स्वर्गीय शर्माजी के भक्तो, मित्रो तथा शिष्यो और प्रशसको के सम्मुख कर-बद्ध क्षमा-प्रार्थी है ।

आचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्मा

लेखक : श्री श्रीराम शर्मा

पडित पद्मसिंह शर्मा का विद्वत्तापूर्ण साहित्य आज भी सब लोग बडी रुचि मे पढते है और आगे भी इसी प्रकार पढा जाता रहेगा। हमें दुख तो इस बात का है कि आधुनिक हिन्दी के इतिहास-लेखको ने उनके साथ प्राय न्याय नही किया। एक इतिहास-लेखक ने तो यह फतवा दिया है, "उनकी भाषा उछलती-कूदती, महफिली ढग की होती थी । वे साहित्य के पारखी न थे । समालोचक तो वे थे ही नहीं ।" हमे आश्चर्य तो यह है कि शर्मा जी के सम्बन्ध में ऐसी ऊल-जलूल सम्मति देने वाले वे इतिहास-लेखक है, जिन्होंने कदाचित् उनकी लिखी एक भी पुस्तक अच्छी तरह नही पढी । हमने स्वय एक

विद्वान् इतिहास-लेखक से जानना चाहा, 'महाशय आपने शर्मा जी के सम्बन्ध मे जो पंक्तियाँ लिखी हैं, उनका आधार क्या है ?' वे बोले, "पुस्तक तो कोई नहीं पढी । अमुक इतिहास-लेखक ने उनके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वही हमने दस-पाँच शब्द अदल-बदलकर लिख दिया है ।" आप कोई हिन्दी-साहित्य-इतिहास-पुस्तक उठा लीजिये । सब मे शर्मा जी के सम्बन्ध मे प्राय एक-सी ही सम्मति लिखी पायगे । कुछ शब्दो का हेर-फेर अवश्य होगा । यह है हमारे हिन्दी-साहित्य के इतिहास की लेखन-प्रणाली और ऐसी है हमारी राष्ट्रभाषा की अनुसधान-शैली । हमने एक बार हिन्दी के एम० ए० के कुछ विद्यार्थियो के सामने श्री पद्मसिंह शर्माजी की विद्वत्ता और लेखन-शैलो की प्रशसा कर उनके विशाल व्यक्तित्व का वर्णन किया । विद्यार्थी बडे प्रभावित हुए । परन्तु एक सप्ताह भी न हुआ था कि उन्होने दो-तीन इतिहास हमारे सामने रखते हुए कहा, "पण्डितजी, आपने तो शर्माजी की उस दिन बडी प्रशसा की थी, परन्तु इन पुस्तको में तो उनकी भाषा को 'उछलती-कूदती' और 'महफिली ढग की' बताया गया है । उन्हें साहित्य का आलोचक और पारखी भी नहीं माना ।" हमने वे स्थल बडे ध्यान से पढे और लेखको की बुद्धि पर बडा क्रोध आया और तरस भी । तरस इसलिए कि दस-बीस दिनो मे कोर्स के लिए किताबे लिखकर अपना पारिश्रमिक सीधा करने वालो से और आशा भी क्या की जा सकती है । एक दिन तो हमारे आश्चर्य और दु ख की सीमा न रही जब एक प्रसिद्ध कालेज के एक हिन्दी-अध्यापक ने श्री प० पद्मसिंह शर्मा विषयक अपनी अनभिज्ञता बताई और बहुत समझाने-बुझाने और याद दिलाने पर भी वे इतना ही कह सके " हाँ-हाँ, पद्मसिहजी थे । वे उर्दू-बुर्दू भी जानते थे ।" यह है हमारे अध्यापको की मनोवृत्ति और अध्ययन-शीलता, जो साहित्य-महारथी प० पद्मसिंह शर्मा तक को नही पहचानने देती, उस सस्कृत, हिन्दी, फारसी और उर्दू के दिग्गज विद्वान् को मामूली उर्दू-बुर्दू जानने वाला कहकर सन्तोष करती है ।

प० पद्मसिंह शर्मा सस्कृत-साहित्य के धुरन्धर विद्वान्, उर्दू-फारसी के ऊँचे आलिम और हिन्दी के नवयुग-निर्माता थे । उनकी सस्कृतज्ञता के सम्बन्ध म काशी के महान् पण्डितो से पूछिए । फारसी-उर्दू की जानकारी का हाल 'हाली', 'अकबर' 'चकबस्त' और 'इकबाल' बतायँगे, जो उनकी इल्मियत से अवाक् रह गये थे । उर्दू साहित्य को नए साँचे मे ढालने वाले प्रोफेसर मोहम्मद हुसेन आजाद उनकी लियाकत के कायल थे । शर्माजी अपनी एक अद्भुत लेखन-शैली लेकर अवतरित हुए थे, जो उन्ही के साथ चली गई ।

'विहारी-सतसई' म प्राणो का सचार करने वाले शर्माजी ही थे, उन्होने ही सबसे प्रथम हिन्दी मे तुलनात्मक आलोचना-पद्धति की नींव डाली। एक बार बडा मजा रहा। शर्माजी दिल्ली मे उर्दू के महान् साहित्यकार और कवि श्री सूरजनरायन 'महर' से मिलने गए। परिचय के दौरान मे परिचय कराने वाले मित्र ने यह भी कह दिया कि शर्माजी ने 'विहारी-सतसई' पर बडा सुन्दर भाष्य लिखा है। 'विहारी-सतसई' का नाम सुनते ही 'महर' साहब आवेश मे आकर बोले, **'उस गन्दी, भद्दी और फुहश किताब पर जो छूने के काबिल भी नही है।** शर्माजी ने सतसई के सम्बन्ध मे ये बेजोड वाक्य बडे धैर्य से सुने और सहन किये। फिर साधारण बातचीत होती रही। उर्दू साहित्य का जिक्र छिडा।

सत्यनारायण के मन्दिर मे, जहाँ शर्माजी ठहरे हुए थे और सतसई भाष्य का द्वितीय सस्करण छपा रहे थे, आकर शर्माजी ने अपनी लिखी विहारी सतसई की भूमिका 'महर' साहब के पास भेजी और उस पर लिख दिया, **"अगर इस किताब के कुछ सफे जनाब पढ़ेंगे तो ममनून हूँगा।"** 'महर साहब' के पास भूमिका का भाग पहुँच गया। एक दिन आश्चर्य की सीमा न रही जब वे अपनी लकुटी टेकते-टेकते सत्यनारायण के मन्दिर मे पहुँचे और बडी विनम्रता से बोले **"मैं आपकी सारी किताब एक साँस मे पढ़ गया। मैंने उस दिन 'सतसई' को गन्दी और फुहश बताया था, आज अपनी उस बेअदबी, गुस्ताखी और बदलियाकती के लिए माफी मागने आया हूँ। मुझे अफसोस है अब तक मैंने आपकी यह पुस्तक नहीं पढी। मैं तो आपकी इल्मियत और इतने बढ़िया स्टाइल के लिए धन्यवाद और मुबारकवाद देने आया हूँ।"** 'महर साहब' उन दिनो शर्माजी के अनन्य भक्त बन गये और जिस सतसई को उन्होने फुहश और गन्दी किताब बताया था, उसी पर बडी सुन्दर सम्मति लिखी, जो द्वितीय सस्करण मे छपी है।

चकबस्त साहब और महाकवि अकबर ने एक बार पडितजी से कहा था **'आप-जैसा इल्मदोस्त हमें दूसरा नही मिला।'** हाली और इकबाल की भी यही राय थी। हिन्दुस्तानी एकेडेमी में जब शर्माजी ने अपना निबन्ध पढा तब उस मीटिंग के सभापति जस्टिस सुलेमान ने शर्माजी की लेखन-शैली और विद्वत्ता की भरपेट दाद दी थी। आचार्य द्विवेदीजी शर्माजी की लेखनी के बडे प्रशसक थे। हिंदी की ही भाँति शर्माजी की सस्कृत और उर्दू लिखने की भी बडी प्रौढ और आकर्षक शैली थी। 'जमाना' के सम्पादक मुन्शी दयानारायण निगम, मुन्शी प्रेमचन्द, ख्वाजा हसन निजामी आदि शर्माजी की उर्दू लेखन-शैली के बडे भारी मद्दाह थे। आपकी सस्कृत लेखनशैली भी बडी प्रभावपूर्ण और

अद्भुत थी। एक दार्शनिक ग्रथ पर शर्माजी की लिखी एक संस्कृत भूमिका को पढकर स्वय उनके सस्कृत-गुरु महान् विद्वान् श्री प० काशीनाथ शास्त्री ने कहा था, **'ऐसी सुन्दर और सरल संस्कृत लिखना पद्मसिंह का ही काम है। मैं स्वयं उस शैली पर नहीं लिख सकता।'** प० पद्मसिंह शर्मा काव्य-साहित्य के साधारण विद्वान् न थे। सस्कृत, फारसी, हिन्दी और उर्दू का ऐसा कोई काव्य-ग्रथ न था जिसका उन्होने अध्ययन न किया था और जिसे वे दूसरो को पढा न सकते थे। पडितजी से बडे-बडे आचार्य और विद्वान् साहित्य पढने जाते थे उनका पुस्तकालय विविध भाषाओ के ग्रन्थो का भण्डार है। वे रात-रात भर पढते और लिखते थे। चिट्ठियाँ लिखने मे तो वे हिन्दी में अद्वितीय थे, इस दिशा मे उन तक कोई नही पहुँच सका। वे नवयुवक लेखको और कवियो को प्रोत्साहन भी दिल खोलकर देते थे। किसी की कोई रचना पसन्द आई और तुरन्त पत्र लिखकर उसे दाद दी, फिर वह रचना किसी छोटे-से-छोटे विद्यार्थी की ही क्यो न हो। वे ऐसे लेखको और कवियो को दाद देने प्राय उनके घर पर भी पहुँचते थे। कहाँ तक लिखें प० पद्मसिंहजी असली अर्थ में साहित्याचार्य और वास्तव मे साहित्य-महारथी थे। वे नये युग के प्रवर्तक और अभिनव हिन्दी के निर्माताओ मे से थे। उनके एक-एक गुण पर पृथक्-पृथक् निबन्ध लिखने की आवश्यकता है। जिस महान् साहित्यकार का इतना अधिक महत्त्व है, उसके सम्बन्ध में हिन्दी के इतिहासकार कितने कजूस और सकीर्ण है, यह बात उनकी लिखी सम्मतियो से प्रकट है। क्या यह पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति हिन्दी को कभी ऊँचा उठने देगी? क्या यह नकलची इतिहास-लेखक सचमुच इतिहासकार कहे जाने योग्य है?

आचार्य श्री प० पद्मसिंह शर्मा के सम्बन्ध में जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उसका उद्देश्य उनकी प्रशसा करना नही है। कवि या साहित्यकार की प्रशसा तो उसकी रचना से ही होती है। फिर स्वर्गीय आत्माओ के लिए प्रशसा या अप्रशसा कोई अर्थ ही नही रखती। इन पक्तियो के लिखने से हमारा प्रयोजन यह है कि जिन साहित्यकारो की सहृदय काव्य-मर्मज्ञो और विद्वानो मे इतनी श्रद्धा और प्रतिष्ठा है, उनके सम्बन्ध मे 'नकलची' इतिहास-लेखक कितने कजूस और सकीर्ण है। इतिहासकार का कर्त्तव्य महान् है। उसे न्याय-मूर्ति की तरह सत्य घटना का ही उल्लेख करना चाहिए, परन्तु यहाँ तो अजीब हालत है। अपने मित्र, भक्त, श्रद्धेय, शिष्य और साथियो की तो ये नामधारी इतिहास-लेखक प्रशसा करते नही अघाते, परन्तु जो प्रशसा के

सचमुच पात्र है, उनकी जान-बूझकर उपेक्षा की जाती है या बेढगे तौर से उनका चित्रण होता है ।

असल में बात यह है कि प्रारम्भ में जिन दो-तीन विद्वानो ने आधुनिक हिन्दी-साहित्य की रूप-रेखा लिखी उन्होने बडा श्लाघ्य काम किया। परन्तु यह काम बहुत जल्दी में हुआ। फिर उस पर विचार या अनुसन्धान करने के लिए सम्भवत उन लेखक महानुभावो को समय ही नही मिला। नकलची इतिहास-लेखको ने उन्ही के आधार पर बिना और अधिक छान-बीन किये मक्खी-पर-मक्खी मारना शुरू कर दिया। अपने जान-पहचान के इष्ट मित्र या भक्त शिष्य मिले तो उनको भी टाँक दिया और पन्द्रह-बीस दिन मे एक वृहद् इतिहास-ग्रन्थ तैयार कर के बेचारे प्रकाशक के मत्थे मढ दिया। कुछ टके मिल गये और इतिहास-लेखक की श्रेणी में भी जा बैठे। चुपडी और दो-दो। हमने प पद्मसिह शर्मा को अधिक समीप से देखा है। उनके सम्बन्ध मे हम बहुत-सी बाते जानते थे, अतएव उनमें से कुछ का सकेत कर दिया है। ऐसे और भी साहित्यकार है जिनकी इतिहास-लेखकों ने उपेक्षा और अवहेलना की है। हम इसे इतिहासकारो का अन्याय कहते है। हिन्दी मे आधुनिक युग के एक सर्वांग-सम्पन्न इतिहास की आवश्यकता है, जिसमे साहित्यकारो का पूरा स्वरूप दिखाया जाय और उनके अच्छे-बुरे या साधारण होने का निर्णय स्वय पाठको पर छोडा जाय। रीडरबाजी के नाम पर 'नकलची' इतिहास-लेखको द्वारा जो अनर्थ हो रहा है, उसका प्रभाव भावी सन्तान पर अच्छा नही पडेगा। कुछ दिनो बाद ये इतिहास 'यार-दोस्तो' के स्मृति-पत्रक-मात्र बन जायगे और ये वास्तविकता से अत्यन्त दूर होगे।

तीसरा भाग : कृतित्व

शर्मा जी की भाषा और शैली

लेखक . श्री किशोरीदास वाजपेयी

हिन्दी-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट समालोचक स्वर्गीय प० श्री पद्मसिह जी शर्मा की भाषा मे सजीवना और शैली मे चुटीलापन है। वे काव्यालोचक थे। काव्य मे भी, विशेषन शृगारमयी रचना की परख आपने की है। आपकी भाषा शृगार के अनुरूप है और शैली उसका पोषण करती है। यही कारण है कि साहित्य-ससार ने एक स्वर से उसकी प्रशसा की है। उनकी उस आलोचना पर न्यौछावर है—'बिहारी की सतसई' का शर्मा जी के 'सजीवन भाष्य' के कारण 'अगनित वढ्यो उदोत।' जिन्होने कभी आँख उठाकर 'सतसई' की ओर न देखा था और न देखना चाहते थे, वे भी उसके पक्के हिमायती बन गए। 'सञ्जीवन' ने अपना काम कर दिया। अँगूठी से बहुत ज्यादा कीमत का उसमे जडा हुआ नग निकला, जिसने सबका ध्यान उधर आकर्षित कर लिया। परस्पर एक ने दूसरे की छटा वढाई। लोगो की यह आशसा पूरी हुई कि 'रत्न समागच्छतु काञ्चनेन।' बिहारी को अनुरूप ही समालोचक मिले। यह कितने सौभाग्य की बात है।

ससार मे सब तरह के जीव होते है। किसी को कुछ अच्छा लगता है और किसी को कुछ। किसी एक ही वस्तु से सबका प्रसन्न होना प्राय. असम्भव है। फलत शर्मा जी की समालोचना-शैली और भाषा भी हिन्दी-साहित्य के कुछ विद्वानो को पसन्द नही पडी। कुछ समालोचक-पुगवो ने स्वर्गीय शर्मा जी की भाषा और शैली को अच्छा नही बतलाया है। वे लिखते है —

"शर्मा जी की समालोचना-शैली बडी ही व्यंग्यमयी हो गई है और इसमें कवियों की प्रशंसा में 'वाह वाह' कहने का उर्दू ढंग पकडा गया है। यदि शर्मा जी कुछ अधिक गम्भीरता और शिष्टता साथ लिये रहते तो अच्छा होता। कदाचित् उनकी उछलती, कूदती, फुदकती हुई भाषा-शैली के लिए यह सम्भव न था।"

दु ख और आश्चर्य का विषय है कि जिस व्यग्य को कविता का सर्वस्व

कहा गया है, जिस पर सब साहित्य-ग्रन्थ कुर्बान हैं, उसे ही ये समालोचक नापसद करते है, उस पर क्या कहा जाय ?

उनका यह भी कहना है कि शर्मा जी अपने को यदि और अधिक गम्भीर रखते, तो अच्छा होता। मै कहता हू, यदि ऐसा होता तो बुरा होता। उस दशा मे 'सजीवन' सजीवन न रह जाता, कुछ और ही हो जाता। आज तक कितनी काव्यालोचनाएँ प्रकाशित हुई ? उनमे से कौन ऐसी है, 'सजीवन' के अलावा, जिसने अपने आलोच्य की ओर लोगो को आकर्षित किया हो और इतनी चमक-दमक पाई हो? काव्य—और शृगारात्मक काव्य—कुछ दर्शन-शास्त्र तो है ही नही, जिसकी आलोचना में गम्भीरता और शैली मे रोना स्वीकार किया जाय! प्रतिपाद्य या आलोच्य-विषय के अनुसार भाषा और शैली का होना आवश्यक है। यदि आप किसी वेदान्त-ग्रन्थ की आलोचना करते है, तो गम्भीरता की आवश्यकता है, पर कविता की आलोचना मे यह गम्भीरता अत्यन्त फीकापन ला देगी, विशेषत शृगार और हास्य रस की कविता के विषय में। यही सब सोच-समझ कर तो साहित्य-ग्रन्थो मे प्राचीन आचार्यो ने लिखा है कि प्रतिपाद्य विषय आदि के अनुसार भाषा और शैली बदलनी चाहिए। सदा एक शैली का स्वीकार साहित्य मे हानिकर है। उक्त आलोचको की गम्भीरता सर्वथा अवाच्छनीय है।

उन्होने शर्मा जी की भाषा को उछलती-कूदती और फुदकती हुई बतलाया है। यही तो चाहिए। यही तो सजीव भाषा है। मुमूर्षु निर्जीव भाषा का कविता-क्षेत्र मे क्या काम ? उसे कौन पूछेगा ? परीक्षा के विद्यार्थी भले ही जबर्दस्ती छाती पर लाद ले। और कोई पूछने का नही।

कवियो की प्रशसा में 'वाह वाह' के उर्दू ढग को इन आलोचको ने अच्छा नही समझा है। अपनी समझ! सहृदय लोग तो रस-सिद्ध कवि की उत्कृष्ट कविता की सहस्र-मुख होकर प्रशसा करते है, और उनके मुख मे ही नही, नेत्रो से भी 'वाह' (वा नीर, पाण्य) निकल पडता है। 'गुणाधिके वस्तुनि मौनिता' उनके हृदय मे चुभती है। तभी तो वे सहृदय है। ये आलोचक किसी की प्रशसा मे 'वाह' न निकाले, तो उनकी इच्छा!

जो कुछ भी हो, शर्मा जी के जोड का समालोचक अभी तक हिन्दी-ससार में पैदा नही हुआ है।

शर्मा जी के लिए देव कवि को निन्द्य तथा बिहारी को स्तुत्य ठहराने को वह अलम् होता था। बिहारी पर जो आपने बडा ग्रन्थ प्रचुर परिश्रम से बनाया, वह श्लाघ्य होने पर भी अनुचित विचारो के भारी समारोह से बहुत कुछ दूषित है। शर्मा जी प्रबल लेखक तथा श्रमकर्ता आलोचक थे, किन्तु हम उन्हे समालोचक नही कह सकते, क्योकि हठवाद उनके विचारो में कुछ अधिकता से है। हिन्दी में उर्दू कवियो का कुछ ज्ञान शर्मा जी लाये। "

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

"श्री पद्मसिंह शर्मा ने तुलनात्मक आलोचना को जन्म दिया। उनकी तुलनात्मक आलोचना ने, 'देव' बडे है कि 'बिहारी' बडे है, इस प्रकार के झगडे लाकर खडे किये। आपकी शैली अधिकतर व्याख्यात्मक है। आपके लिखने का ढङ्ग प्रवाहपूर्ण और आलोचना का ढङ्ग सजीव है।"

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

"आलोचना के क्षेत्र मे पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने एक अनोखी ही शैली का प्रदर्शन किया। इस शैली की विशेषता थी—एक की विशेषता को परखकर दूसरे की विशेषताओ को दिखाना। एक प्रकार की तुलनात्मक शैली का जो आकर्षक रूप शर्मा जी ने हिन्दी मे उपस्थित किया, वह चटपटा तो अवश्य था, पर गम्भीर न था। इसमें सन्देह नही कि उसमें एक नवीन अनुभूति का लिखित रूप था, और उसके बाद उसी ढङ्ग पर कुछ आलोचनाए लिखी गई। शर्मा जी की इस भाषा की चटक-मटक, उछल-कूद, लपक-झपक और कारीगरी, जिसमे उर्दू-हिन्दी का मजेदार सम्मिश्रण था, अपने ढङ्ग की एक निराली वस्तु थी। "

बाबू गुलाबराय

"स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई की भूमिका' नामक ग्रथ में बिहारी की तुलनात्मक समालोचना निकाली। उसमें आपने बिहारी की उत्कृष्टता दिखलाई। यद्यपि उनकी समालोचना में पक्षपात खीचतान और महफिली दाद-सी दिखलाई पडती है, (जैसे बिहारी की कविता शक्कर की रोटी है, जिधर से तोडो मीठी है।) और इस कारण कही-कही (Impressionist criticism) प्रभाववादी आलोचना का रूप धारण कर लेती है, तथापि वह पाण्डित्यपूर्ण है। उससे बिहारी के सम्बन्ध में लोगो की जानकारी हुत कुछ बढ गई है और उसी के साथ गाथा-साहित्य मे भी हिंदी

भाषा-भाषियो का परिचय हुआ है । उनकी आलोचना केवल प्रभाववादी ही नही है, अर्थात् उन्होने केवल अपने मन को अच्छी लगने वाली बात ही नही कही है, वरन् उसमे शास्त्रीय गुण भी दिखलाये है । इतना अवश्य है कि उन्होने बिहारी को पूर्ववर्ती कवियो से श्रेष्ठ बतलाने में कही-कही थोडी-बहुत खीच-तान की है। आपकी आलोचनाओ में कुछ व्यग्य की मात्रा भी रहती है, उसके कारण उनमे एक विशेष सजीवता आ जाती है। "

डाक्टर जगन्नाथप्रसाद शर्मा

"पण्डित पद्मसिह शर्मा की आलोचनात्मक पद्धति—एक की विशेषता की परख दूसरे की विशेषताओ को दिखाकर करना—यह प्रकट करती है कि लेखक का अधिकार दोनो आलोच्य कवियो पर समान है । इस प्रकार तुलनात्मक आलोचना का जो आकर्षक रूप शर्मा जी ने हिन्दी साहित्य मे उपस्थित किया है वह वस्तुत नवीन और स्तुत्य है। स्तुत्य वह इस विचार से है कि उसने एक नवीन अनुभूति को लिखित रूप दिया है । इस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता थी। इसके उपस्थित होते ही अन्य सुन्दर तुलनात्मक आलोचनाएँ लिखी गईं। किसी विषय का आरम्भ उद्भावना-शक्ति का परिचायक होता है। इस विचार से शर्मा जी का स्थान बडे ही महत्त्व का समझना चाहिए।"

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

"प० पद्मसिह जी साहित्य के उच्चकोटि के पंडित थे। उन्होने सस्कृत, फारसी और उर्दू के साहित्यो का विधिवत् अध्ययन किया था । साहित्य-शास्त्री होने के कारण उनमे सरसता अधिक थी। कहावत है कि "विद्या ददाति विनयम्"। परन्तु शर्मा जी-जैसे बहुत कम विद्वान् विनय-सम्पन्न पाये जाते है । अधिकतर तो अपनी विद्या के घमण्ड में चूर और दूसरो को कुछ न समझने वाले ही देखे जाते है ।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

शर्मा जी साहित्य के पूरे मर्मज्ञ और ज्ञाता थे। स्पष्टवादी तो एक ही थे। मुँह पर खरी सुनाते थे। आलोचना तो उनकी तीखी होती ही थी। ब्रज भाषा के पक्के प्रेमी और प्राचीन कवियो के पूरे भक्त थे । उनकी भाषा बडी चटपटी और चुलबुली होती थी। हसी-मजाक की तो वे पुडिया थे। उन्हे तुलनात्मक समालोचना का प्रवर्तक कहने मे कोई अत्युक्ति नही है। शर्मा जी फारसी के फाजिल, उर्दू के उस्ताद और हिंदी के हीरा ही नही, सस्कृत-साहित्य के भी सुधा-निधि थे ।

चौथा भाग :: प्रतिभा

बिहारी की बहुज्ञता

श्री पद्मसिंह शर्मा

[शर्मा जी ने 'सतसई सञ्जीवन भाष्य द्वारा हिन्दी में जिस तुलनात्मक समालोचना की नीव डाली थी, उसकी कुछ झाँकी पाठको को उनके प्रस्तुत लेख से मिलेगी।]

कवि के विषय मे किसी विद्वान् का कथन है कि "कवि प्रकृति का पुरोहित होता है"—जिस प्रकार पुरोहित के लिए यजमान के समस्त कुलाचारो और रीति-रिवाजो का अतरग-ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार कवि को भी प्रकृति के रहस्यो का मर्मज्ञ होना उचित है। इसके बिना कवि, कवि नही हो सकता। कवि ही प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा ऐसी बाते चुन सकता है जिन पर दूसरे मनुष्य की दृष्टि नही जाती, जाती भी है तो तत्त्व तक नही पहुँचती। तह तक पहुँचकर कोई ऐसी बात नही निकल सकती, जो साधारण प्रतीत होने पर भी असाधारण शिक्षाप्रद हो, लौकिक होने पर भी अलौकिक आनदोत्पादक हो और सैकडो बार की देखी-भाली होने पर भी नवीन चमत्कार दिखाने वाली हो। प्रकृति के छिपे और खुले भेदो को सर्वसाधारण के सामने मनोहर रूप मे प्रकट करना ही कवि का काम है। "अज्ञेय मीमासा" करने बैठना, आकाश के तारे तोडने दौडना, कवि का काम नही है। कभी-कभी कवि को ऐसा भी करना पडता है सही, पर वह मुख्य दार्शनिको का काम है। कवि का काम इससे भी बडा गहन है केवल व्याकरण और छद शास्त्र के नियमो से अभिज्ञ होकर वर्णमात्रा के काँटे में नपी-तुली पद्य-रचना का नाम कवित्व नही है, जैसा कि आजकल प्राय समझा जाने लगा है। प्रकृति के पर्यवेक्षण की असाधारण शक्ति रखने के अतिरिक्त विविध कलाओ, अनेक शास्त्रो का ज्ञान भी कवि के लिए आवश्यक है, जैसा कि कविता-मर्मज्ञो ने कहा है—

"न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥"

अर्थात्—न ऐसा कोई शब्द है, न ऐसा अर्थ है, न ऐसा कोई न्याय है और

न कोई ऐसी कला है, जो काव्य का अग न हो, इसलिए कवि पर कितना भारी भार है, कुछ ठिकाना है। इस सब भार को अपनी लेखनी की नोक पर उठाने की जो शक्ति रखता है, वही महाकवि है।

"सकलविद्यास्थानैकायतनं पंचदशं काव्य विद्यास्थानम्"

—राजशेखर

(जहाँ चौदह विद्या-स्थानो का एक जगह सगम होता है वह 'काव्य' पन्द्रहवाँ 'विद्या-स्थान' है।

यह सब बाते बिहारी की कविता मे प्रचुर परिणाम में पाई जाती है। सतसई पढने से प्रतीत होता है कि बिहारी का प्रकृति-पर्यवेक्षण बहुत ही बढा-चढा था। मानव-प्रकृति का उन्हे असाधारण ज्ञान था। इसके वह सचमुच पूरे पुरोहित थे। उनका सस्कृत साहित्य का पाडित्य इससे ही सिद्ध है कि सस्कृत के महारथी कवियो के मुकाबिले में उन्होने अद्भुत पराक्रम दिखलाया है—सस्कृत पद्यो की छाया पर रचना करके, नवीन चमत्कार लाकर कही-कही उन आदर्श पद्यो को विच्छाय बना दिया है। गणित, ज्योतिष, वैद्यक, इतिहास, पुराण, नीतिशास्त्र और दर्शनो से भी उनका अच्छा प्रगाढ परिचय था, जैसा कि आगे के अवतरणो से सिद्ध है।

बिहारी की प्रतिभा का विहारस्थल बहुत विस्तृत था, सर्वत्र समान रूप से उसकी गति अप्रतिहत थी। भास्कर की प्रभा की तरह वह प्रत्येक पदार्थ पर पड़ती थी। यही नही, जहाँ सूर्य की किरणें भी नही पहुँचती, वहाँ भी वह पहुँचती थी। 'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि' इस कथन की पुष्टि बिहारी की कविता से अच्छी तरह होती है। सूर्य की किरणें आलोकग्राही पदार्थ पर पडकर अपने असली रूप में प्रतिफलित होती है, दूसरी जगह नही, परन्तु बिहारी की अद्भुत प्रतिभा का प्रकाश जिस पदार्थ पर भी पडा, उसे ही अपने रूप में चमका कर दिखा दिया। गणित, ज्योतिष, इतिहास, नीति और दार्शनिक तत्त्वो से लेकर बच्चो के खिलौने, नटो के खेल, ठगो के हथकडे, अहेरी का शिकार, पौराणिक की धार्मिकता, पुजारी का प्रसाद, वैद्य की पर-प्रतारणा, ज्योतिषी का ग्रहयोग, सूम की कजूसी, जिसे देखिये वही कविता के रग मे रँगा चमक रहा है।

इस जगह सबके उदाहरण देना कठिन है, बात बहुत बढ जायगी, इसलिए इस प्रकार के कुछ नमूनो से ही सतोष करना होगा। किसी काव्य पर कुछ लिखते हुए प्रारम्भ में उस काव्य से सुन्दर सूक्तियो के नमूने देने की रीति है, हम भी चाहते थे कि ऐसा करें—इस प्रकरण में बानगी के तौर पर

कुछ सूक्तियो के नमूने सतसई से उद्धृत करे—पर इस इच्छा से विवशतावश विरत होना पडा। इसके दो कारण है, एक तो अनेक सूक्तियाँ तुलनात्मक समालोचना मे और विरह-वर्णन मे आ गई है, कुछ इस प्रसग मे आ जायगी, कुछ सतसई-सहार मे मिलेगी। इसलिए पृथक् देने की कुछ आवश्यकता न रहो। दूसरे, सतसई मे किसे कहे कि यह सूक्ति है और यह साधारण उक्ति है। इस खाँड की रोटी को जिधर से तोडिये उधर से ही मीठी है, इस जौहरी की दूकान मे सब ही अपूर्व रत्न है। बानगी मे किसे पेश करे। एक को खास तौर पर आगे करना दूसरे का अपमान करना है, जो सहृदयता की दृष्टि से, हम समझते है, अपराध है। रुचि-भेद से किसी को कोई सूक्ति अच्छी जँचे, कोई वैसी न जँचे, यह और बात है। किसी को शब्दालकार पसन्द है किसी को अर्थालकार, कोई वर्णन-वैचित्री पर रीझता है तो कोई सादगी पर फिदा है, कोई रस पर मरता है तो कोई वध-सौष्ठव पर जान देता है। कोई पदार्थ का उपासक है तो कोई पदावली के पाँव पूजता है।

सतसई के विषय में स्वर्गीय राधाकृष्णदास जी की यह सम्मति सोलह आना सत्य है—

"यह सतसई भाषा की कविता की टकसाल है"

और बिहारीलाल के सम्बन्ध मे गोस्वामी श्रीराधाचरण जी की इस युक्ति में कुछ भी अत्युक्ति नही है कि—

"यदि सूर सूर, तुलसी शशी, उडगन केसवदास ह तो बिहारी पीयूष-वर्षी मेघ है, जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आछन्न हो जाता है, फिर उसकी वृष्टि से कवि-कोकिल कुहकने, मनोमयूर नृत्य करने और चतुर-चातक चुहकने लगते हैं। फिर बीच-बीच मे जो लोकोत्तर भावों को विद्युत् चमकती है, वह हृदयच्छेद कर जाती है।"

भाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था। सतसई की भाषा ऐसी विशुद्ध है और शब्द-रचना इतनी मधुर है कि सूरदास को छोडकर दूसरी जगह उसकी समता मिलनी दुर्घट है, सतसई के सम्बन्ध मे ब्रजभाषा के किसी पुराने पारखी की यह सम्मति सर्वथा सत्य है—

"ब्रजभाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि-विशाल।
सबकी भूषन सतसई, रची बिहारी लाल॥'

ब्रजभाषा के मर्मज्ञ का विदग्ध हृदय इस कथन की सत्यता का साक्षी है। ब्रजभाषा को सिर्फ सूँघकर परखने वाले कुछ महापुरुषो की दिव्य दृष्टि में इसकी भाषा वैसी 'बढिया' चाहे न हो, पर भाषा के जौहरी भाव से भी अधिक

इसकी परिष्कृत भाषा पर लट्टू है। इस समय जब कि खडी बोली के जोशीले नौजवानो की ब्रिगेड ने ब्रजभाषा के 'विजन' का विगुल वजाकर कतले-श्राम मचा रखा है, खडी बोली की किरातपुरी के तोते तक जब इसे देखकर दारय, मारय, ग्रस, 'पिव' कहकर चिल्ला रहे है, तव ब्रजभाषा के सौष्ठव की दुहाई देना, नक्कारखाने में तूती की आवाज पहुँचाने के बराबर है। ब्रजभाषा के मर्मज्ञ स्वय जानते है कि सतसई की भाषा कैसी कुछ है और जो नही जानते है वे किसी के समझाने से भी क्या समझेंगे।

गणित का ज्ञान

कहत सबै बैंदी दिये आँक दसगुनो होत।
तिय लिलार बैंदी दिये अगनित बढ़त उदोत॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोत।
बंक विकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत॥

गणित के मूल सिद्धात का कविता के रूप में कितना मनोहर निदर्शन है। गणित के सिद्धात से अपने मतलव की वात कितने अच्छे ढग से सिद्ध की है। विन्दु (शून्य) देने से अक दस गुना हो जाता है। और तिरछी विकार लगाने से दाम के रुपये बन जाते हैं। यह सब गणितज्ञ जानते है। पर इस तरह कहना कवि ही जानता है। गणित-शास्त्र मे दसगुणोत्तरा सख्या रखने की चाल है। इकाई को दस से गुनकर दहाई और उसे दस से गुनकर सैकडा (शत) इत्यादि दसगुणोत्तर सख्या बनाते है। पर यहाँ विहारीजी के गणित मे कुछ दूसरा ही चमत्कार है—यहाँ दसगुणित नही असख्य-सख्या-गुणित-अक (उद्योत) पैदा हो जाते है। यह कवि की प्रतिभा का ही काम है।

ज्योतिष का चमत्कार

मगल विंदु सुरग, ससि मुख केसर आड गुरु।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत॥

इस सोरठे में बिहारी ने अपने ज्योतिष-ज्ञान का परिचय बडे मनोहर रूप मे दिया है। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि जव वृहस्पति और मगल के साथ, चन्द्रमा एक राशि पर आता है तो देशव्यापक वृष्टि होती है—

'गुरु-भौम-समायोगे करोत्येकारर्णवा महीम्'

ज्योतिष के इस तत्त्व को कवि ने कितना कमनीय रूप दिया है। लौकिक पुरुषो को जितना आनन्द इस भौतिक वृष्टि से होता है उससे कही अधिक विदग्ध सहृदयो को इस कवितामृतवर्षा से होता है।

माथे पर लगी लाल वेंदी, मंगल है। मुख चन्द्रमा है। उस पर केसर का (पीला) तिलक वृहस्पति है। इन सबने एक नारी (नाडी)—स्त्री राशि—में इकट्ठे नेत्र-होकर संसार को रसमय (अनुरागमय, जलमय) कर दिया—

मंगल का रंग लाल होता है इसलिए उसका 'अंगारक' और 'लोहितांग' नाम है। सो यहाँ वेंदी है। वृहस्पति का वर्ण पीला है वह यहाँ केसर का तिलक है। मुख की चन्द्रता प्रसिद्ध ही है। 'नारी' और 'रस' शब्द श्लिष्ट है (रस-जल और शृङ्गार, 'रसो जल रसो हर्षो रसः शृङ्गार उच्यते ॥')

यह सोरठा, श्लेषानुप्राणित समस्त-वस्तु-विषय-सावयव रूपक का और कवि के ज्योतिष ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है।

महाकवि गालिब ने भी (नीचे के शेर में) ज्योतिष के फलादेश की परीक्षा आशिको की किस्मत पर करनी चाही है, और मौलाना हाली ने इसे कवि की प्रतिभा का उत्तम उदाहरण बतलाकर कहा है कि आशिक अपनी धुन मे इतना मस्त (तल्लीन) है कि उसे हर जगह अपने ही मतलब की सूझती है, ज्योतिषी ने जो साल को अच्छा बतलाया है, उसका असर संसार की अन्य घटनाओ पर क्या होगा, इससे उसे कुछ मतलब ही नहीं। वह देखना चाहता है कि देखूं आशिक इस साल बुतो से क्या फैज (लाभ) पाते है।

देखिये पाते हैं, उश्शाक बुतो से क्या फैज़,
इक बिरहमन ने कहा है कि यह साल अच्छा है।

(गालिब)

सनि कज्जल चख झख लगनि उपज्यो सुदिन सनेह।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेस सब देह ॥

ज्योतिष का सिद्धान्त है कि जन्म समय में यदि शनि, गुरु, की राशि—अर्थात् धन या मीन मे, और स्वराशि—मकर या कुभ में तथा उच्चराशि—तुला में हो तो इस सुलग्न मे जन्म लेने वाला मनुष्य नरपति होता है। जैसा कि लिखा है—

"गुरुस्वर्क्षोच्चस्थे नरपतिः।"

(वराह मिहिर वृहज्जातक)

कवि के स्नेह-बालक की जन्म-कुडली मे देखिये यह योग कैसा अच्छा पडा है—आंखन का जल—शनि है। चख—चक्षु मीन है,—(शनि का रग नीला है और मीन नेत्र का उपमान है यथा मीनाक्षी)—ऐसे सुयोग में जिसका जन्म हुआ है वह स्नेह-बालक, सब देह रूप देश पर अधिकार जमा कर—राजा बन-कर—क्यो भोग न करेगा ? अवश्य करेगा ज्योतिष की बात कभी झूठ हो

सकती है। ज्योतिष के फलादेश में किसी को सदेह भी हो सकता है, पर बिहारी के इस ज्योतिष मे सदेह का अवसर नही है।

तिय तिथि तरनि किसोर, वह पुन्न (पुन्य) काल सम दोन।
काहू पुन्यन पाइयत बैस-सन्धि-संक्रोन ॥

इस दोहे मे मक्राति के पुण्य प्राप्य पर्व का कितना अच्छा रूपक है। इस रूपक के 'ब्रह्मकुड' मे रसिक भक्तो के मन अनगिनत गाते लगा रहे हैं।

वैद्यक विज्ञान

"मैं लखि नारी ज्ञान, करि राख्यो निरधार यह।
वह ई रोग निदान, वहै, वैद औषध वहै॥"

कविता के नलके में वैद्यक विज्ञान का 'आसव' खीचकर इस सोरठे की शीशी मे भर दिया है। वैद्यक में और है क्या ? नाडी-ज्ञान, रोग-निदान, औषधि और वैद्य। मूल बाते यह तीन चार हैं, बाकी इसकी व्याख्या है।

नारी—(नाडी) ज्ञान से क्या अच्छा रोग का निदान किया है ?

"वहई रोग निदान, वहै, वैद्य औषध वहै"

वही रोग का निदान (आदि कारण) वही वैद्यक-चिकित्सक और वही औषध है।

"यह तर्ज़ अहसान करने का तुम्हीं को ज़ेब देता है,
मरज़ में मुब्तला करके मरीज़ों को दवा देना"

(अकबर)

"मुहब्बत में नही है फर्क जीने और मरने का।
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पै दम निकले॥"

(ग़ालिब)

"यह विनसत नग राखिकै जगत बडो जस लेहु।
जरी विषम-जुर-ज्याइये आय सुदर्शन देहु॥"

इस नष्ट होते हुए नग (रत्नकामिनीरत्न) को बचाकर जगत् में बडा यश प्राप्त करो, विषम ज्वर मे जली हुई को 'सुदर्शन' देकर जिलाओ।

वियोग-व्याधि ने विपम ज्वर का रूप धारण किया है, उसकी निवृत्ति के के लिये सुदर्शन (सुन्दर दर्शन) अपेक्षित है।

'विषमज्वर' और 'सुदर्शन' पद श्लिष्ट है।

इतिहास-पुराण-परिचय

ये दोहे कवि के इतिहास-परिचय के पुष्ट प्रमाण है—

विरह विथा-जल-परस बिन वसियत मो हिय-ताल।

कछु जानत जल-थभ विधि, दुरजोधन लौं लाल।

दुर्योधन को 'जलस्तभन विद्या' सिद्ध थी। उसी के प्रताप से वह युद्ध के अत में कुछ काल तक तालाव मे छिपे बैठे रहे थे।

यह ऐतिहासिक उपमा कविता में आकर कितनी चमत्कृत हो गई है। कोई विरहिणी कहती है—

हे लाल ! दुर्योधन के समान तुम भी कुछ जलस्तभविधि जानते हो, तभी तो विरह-व्यथा-जल के स्पर्श से बचे रहकर मेरे हृदय-सरोवर मे (आराम से) बैठे हो ? हृदय में रहते हो पर उसमे भरे विरह-व्यथा के जल का—विरह व्यथा का—तुम्हे स्पर्श नही होता बडे बेपीर हो (चिकने घडे हो)

बसि सकोच-दस-बदन-बस साँच दिखावति बाल।
सिय लौं सोधति तिय तनहि लगनि-अगनि की ज्वाल॥

रामायण की प्रसिद्ध घटना 'अग्नि-परीक्षा' का उल्लेख इस दोहे में कितनी उत्तमता से किया है। विवश होकर सीताजी को रावण के यहाँ रहना पडा था वहाँ से छुटकारा पाने पर उन्होने अपने सत्य की परीक्षा अग्नि मे प्रवेश करके दी थी। यहाँ सकोच (लज्जा-सञ्चारी) प्रियदर्शन मे बाधक होने से रावण है, लगन—दृढ प्रेम, अग्नि है। साधना—उत्कण्ठा-पूर्वक स्मरण करना—(सोधित पद श्लिष्ट है—देह शुद्ध करना और स्मरण करना) तनुशोधन है।

अर्थात् उसे सकोच ने ही अब तक तुमसे नही मिलने दिया। सकोच ही मिलने में बाधक था, प्रेम का अभाव नही, उसका तुममे सच्चा अविचल प्रेम है। इसकी परीक्षा वह लगन की अग्नि में बैठकर दे रही है। तुम्हारा स्मरण कर रही है। सदेह छोडकर उसे अगीकार करो !

नीति-निपुणता

दुसह दुराज प्रजानि कौं, क्यो न बढै दुख दद।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिल मावस रवि चंद॥

जब 'दुअमली होती है—प्रजा पर दुहरे शासको का शासन होता है—तो प्रजा के दुख बेतरह बढ जाते है ससार के इतिहास मे इसके अनेक उदाहरण मिलते है। दो फकीर एक गुदडी मे गुजारा कर लेते है पर दो राजा एक 'रजाई' मे नही रह सकते, यह एक प्रसिद्ध कहावत है। जब कभी कही दुर्भाग्यवश ऐसा हुआ है, तो प्रजा पर विपत्ति के बादल छा गये है। प्रजा-पीडन पराकाष्ठा को पहुँच गया है।

बिहारी ने यह बात एक ऐसे दृष्टान्त से समझाई है जिसे सदा सब कोई

देखते हैं। पर नहीं समझते कि क्या बात है। अमावस के दिन अंधकार के आधिक्य का क्या कारण है? यही दुअमली। उस दिन आकाश के दो शासक—सूर्य और चन्द्र—एक राशि में इकट्ठे होते हैं। जिससे संसार में आदर्श अंधकार छा जाता है।

सवैया

एक रजाई समै प्रभु ह्वै सु तमोगुन को बहु भाँति बढ़ावत।
होत महा दुख दंद प्रजान को और सबै सुभकाज थकावत॥
"कृष्ण" कहै दिननाथ निसाकर एक ही मंडल में जुड़ु आवत।
देखो प्रतच्छ अमावस को अँधियारो कितौ जग में सरसावत॥

(कृष्ण कवि)

कहै इहै श्रुति सुमृति सो यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक हि राजा पातक रोग॥

श्रुति, स्मृति और सयाने—नीति-निपुण—लोगो की नीति, सब इसमें एक स्वर से सहमत है कि राजा, पातक और रोग, ये तीन 'निसक'—नि शक्त निर्बल को ही दबाते हैं।

'ज्ञानी' लोग सब कुछ करते हुए भी "पद्मपत्रमिवाम्भसि" निर्लिप्त रहते हैं। ज्ञानाग्नि की प्रचड ज्वाला उनके पातक-पुञ्ज को तृण-समूह की तरह भस्म कर डालती है। जिन पातको का ज्ञानहीन मनुष्य के लिये प्राणात प्रायश्चित्त बतलाया है, प्रचड ज्ञानी (प्रबल शासक जाति के समान) उससे एकदम बरी समझे गये हैं। मतलब यह कि ज्ञान-बलहीन को पातक दबाते हैं। देह-बलहीन को रोग दबाते हैं। और पराक्रमहीन—शासन-बल-रहित—जाति को दबाते हैं। संसार का इतिहास इसमें साक्षी है।

"सर्वो बलवता धर्म· सर्वं बलवतां स्वकम्।
सर्वं बलवता पथ्य सर्वं बलवता शुचि॥" (महाभारत)

बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमान।
भलौ भलौ कहि छाडिये खोटे ग्रह जप दान॥

संसार मे सीधे-सच्चे और भले आदमी का गुजारा नही, उसे कोई पूछता ही नही। छली, कपटी और प्रपची की सब जगह पूजा होती है, पर-पीडन मे जो जितना ही प्रवीण है, उतना ही उसका आदर होता है जिसने छल, बल से दूसरो को दबाकर अपनी धाक बिठा ली—सिक्का जमा लिया, उसी का लोहा सब मानते हैं। सीधे बेचारे एक कोने मे पडे सडते रहते है उनकी ओर कोई आँख उठाकर भी नही देखता। जो खोटे ग्रह हैं (शनैश्चरादि) जिनसे

किसी को हानि पहुँच सकती है—उन्ही के नाम पर जप और दान किया जाता है। भले को भला कहकर छोड देते है। अजी यह स्वभाव ही से साधु हैं, माधो के लेने में न ऊधो के देने में।

दार्शनिक तत्त्व

"मैं समझ्यो निरधार—यह जग काँचो काँच सो।
एकै रूप अपार प्रतिबिंबित लखियत जहाँ॥"

'अध्यात्मवाद' और 'विवर्तवाद' के समान 'प्रतिबिम्बवाद' वेदान्त शास्त्र का एक प्रसिद्ध वाद है। इस सोरठे में कवि ने वेदान्त के 'प्रतिबिंबवाद' को कविता के साँचे में ढालकर कितना कमनीय रूप दे दिया है। ससार की असारता दिखाने के लिये काँच को दृष्टान्त यहाँ कैसा चमक रहा है, इसमे ससार की असारता किस प्रकार पडी झलक रही है।

इस दृश्य प्रपञ्च के वेदान्तमतानुसार ये पाँच अश है—

"अस्ति भाति प्रिय रूपं नाम चेत्यंशपंचकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्।"

(पचदशी)

अर्थात् अस्ति, भाति, प्रिय, रूप और नाम, ये पाँच अश है इनमें पहले तीन—अस्ति, भाति और प्रिय अश ब्रह्म का रूप है और पिछले दो—नाम और रूप जगत् का स्वरूप है। प्रत्येक पदार्थ मे सत्ता प्रकाश और प्रेमास्पदता, ब्रह्म का रूप है, जो सत्य है। घट-पटादि नाम और आकार ससार का रूप है और यही मिथ्या है।

यह जगत् काँच के शीशे की तरह कच्चा— क्षण-भगुर है। ज्ञान की जरा ठेस लगते ही चकनाचूर हो जाता है। प्रतिबिम्बग्राही होनेसे एक ही ब्रह्म प्रतिबिंबित हुआ दीख रहा है, यह सब उसी का विराट रूप है, जो देख रहे हो। नाना-भाव की पार्थक्य प्रतीति का कारण नाम, रूप, मिथ्या है।

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" "नेह नानास्ति किञ्चन" "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते"।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा, रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥"

इत्यादि शतश श्रुतियाँ इस बात का प्रतिपादन डके की चोट कर रही हे।

अज्यौं तरयोना ही रह्यौ श्रुतिसेवत इक अंग।
नाकबास बेसर लह्यौ बसि मुकतन के संग॥

ससार-सागर से पार होने के लिए जीवन्मुक्त पुरुषो की सगति भी एक मुख्य उपाय है यही वात इस दोहे में एक मनोहर श्लेष मे लपेट कर एक निराले ढग से कही गई है। 'तरौना' कान के एक आभूषण का नाम है जिसे तरकी या टेढी भी कहते है, 'बेसर' नाक का भूषण (नथ) है। इस दोहे में कवि ने श्लेष के वल से वडा अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। कहते है कि श्रुति (कान) रूप एक अग का सेवन करने वाला तरौना अव तक 'तरयौना' ही है और 'मुक्तनि के सँग बसि' मोतियो के साथ रहकर 'बेसर' ने नाकबास प्राप्त कर लिया है—नाक में स्थान पा लिया। इसका दूसरा प्रतीयमान अर्थ है कोई किसी मुमुक्षु से कह रहा है कि मुक्ति चाहते हो तो जीवन्मुक्त महात्माओ की सगति करो, श्रुति-सेवा भी एक ससार तरणोपाय है सही, किन्तु इससे शीघ्र ही नही तरोगे, देखो यह कान का तरौना श्रुतिरूप एक अग का कब से सेवन कर रहा है पर अव तक 'तरयौना ही रह्यो'—तरा नही, तरौना ही बना है। और वेसर ने 'मुक्तनि के सग बसि' मुक्तो को सगति 'नाक-वास लह्यो'— वैकुठ—सालोक्य मुक्ति—प्राप्त कर ली।

अथवा केवल श्रुतिसेवी मुमुक्षु से कह रहा है कि एक अग श्रुति का सेवन करते हुए तुम अव तक नही तरे—विचारतरगो में गोते खा रहे हो और वह देखो एक अमुक व्यक्ति की सत्सगति से 'बेसर'—अनुपम नाकवास—वैकुठ-प्राप्ति—सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली। दोहे के तरयौना, श्रुति, अंग, नाक, बेसर, मुक्तनि ये सब पद श्लिष्ट है।

सगति की महिमा से ग्रन्थ भरे पडे है। गोस्वामी तुलसीदास ने भगवद्भक्तों की सत्सगति की महिमा बडे समारोह से समझाई है। पर इस चमत्कारंजनक प्रकार से किसी ने कहा हो, सा हमने नही सुना। विहारी अपने कविता-प्रेमियो की नब्ज पहचानते है, वे जानते है कि 'अपने बावले' को किस प्रकार समझाया जाता है। रस-लोलुप कविता-प्रेमी सत्सगति की महिमा किस रूप में सुनना पसंद करेगे। रात दिन जो चीजे प्रेमियो की नजर मे समाई रहती है उनकी ओर इशारा करके ही उन्हे यह तत्त्व समझना चाहिए। कवि के लिये यही उचित है। नीरस उपदेश पर रसिक-रोगी कब कान देता है। सुनता भी नही, आचरण करना तो दूर रहा।

कवि जब विषयासक्त प्रेमी को विषयासक्ति का दुष्परिणाम समझाना चाहता है तो उसके लिये किसी पतित भक्त या योगभ्रष्ट ज्ञानी का दृष्टान्त देने को वह इतिहास के पन्ने पलटने नही वैठता। वह उस विषयी की दृष्टि

मे बसी हुई चीज को सामने दिखाकर झटपट बोल उठता है कि देखो, विषया-सक्त की दुरतना ।

जोग जुक्ति सिखई सबै मनो महामुनि मैन ।
चाहत पिय अद्वैतता कानन सेवत नैन ॥

इस दोहे मे योगदक्ष कानन-सेवी ब्रह्माद्वैताभिलाषी वानप्रस्थ की समाधि (प्रतीत) है। जिस प्रकार किसी सद्गुरु महामुनि से योग की दीक्षा पाकर कोई प्रधान पुरुष प्रिय परम-प्रेमास्पद-ब्रह्म से अद्वैत—अभेद—चाहता हुआ, कानन—वन का सेवन करता है, इसी प्रकार कामिनी के नयन, महामुनि मदन से योगयुक्ति—प्रिय सगति की युक्ति—सीखकर कानो का सेवन कर रहे है ।

योग, अद्वैतता, कानन,पद श्लिष्ट है 'योग सहननोपाय ध्यानसगतियुक्तिषु' के अनुसार मुनि के पक्ष मे योग का अर्थ ध्यान है। नेत्र के पक्ष मे सगति ।

बुधि अनुमान प्रमान श्रुति किये नीठि ठहराइ ।
सूछम कटि पर-ब्रह्म लौं अलख लखी नहिं जाइ ॥

इस दोहे मे कवि ने परम सूक्ष्म कटि को अलख परब्रह्म की उपमा देकर कौतूहल-जनक कमाल किया है। पूर्वार्द्ध मे ब्रह्म-दर्शन के उपायो का निर्देश करने वाली एक सप्रसिद्ध श्रुति को किस मर्मिकता से निराले ढग पर व्यक्त किया है ।

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य. श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य. ।'

श्रुतियो के द्वारा ब्रह्म के सम्बन्ध मे सुना, अनुमान के द्वारा उसके सच्चिदा-नन्द स्वरूप को जाना, निरन्तर ध्यान द्वारा किसी प्रकार इस तत्व को बुद्धि मे ठहराया, फिर भी ब्रह्म, ऐसा अलक्ष्य (अलख) है कि लखा नही जाता—उसका साक्षात्कार नही होता ।

'कटि' (कामिनी की कमर) भी कुछ ऐसे सूक्ष्म और अलख है। श्रुति—शब्द—प्रमाण—द्वारा सुनते है कि कमर है,—'सनम ! सुनते है तेरे भी कमर है'—फिर अनुमान करते है कि यदि कमर नही है तो यह शरीर—प्रपचस्तन-शैल, मुख-चन्द्र आदि किसके सहारे ठहरे हुए है। 'ब्रह्म'नही है तो यह विश्व-प्रपच—हिमालयादि-पर्वत, चद्रादि ग्रह-मण्डल किसमे स्थित है—कल्पित है । इसीलिए कटि—ब्रह्म अवश्य है। इस तत्व को कटि ब्रह्म के सत्तास्वरूप को—निरतर ध्यान द्वारा किसी प्रकार बुद्धि में ठहराते है। फिर भी 'अलख लखी नहि जाइ उसका साक्षात्कार नही होता, नजर नही आती, दिखलाई नही देती—'कहाँ है किस तरफ को है, किधर है,' यही कहते रह जाते है ।

'सूछम कटि परब्रह्म सी अलख लखी नहि जाय ।'

पूर्ण दार्शनिक 'पूर्णोपमा' है। परब्रह्म उपमान। कटि उपमेय। लखी नही जाय, साधारण धर्म। 'सी, या, लौ' वाचक। देखा वाचक! कैसी मनोहर पूर्णोपमा है।

हिंदी समार के सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली वश्यवाक् वर्तमान कविराज श्रीयुत पडित नाथूराम शकर जी शर्मा 'शकर' ने भी दार्शनिक कविता के रूप मे अनोखे ढग पर 'कमर की अकथ कहानी' कही है, कटि का चमत्कृत वर्णन इस प्रकार किया है—

घनाचरी

'पास के गये पै एक बूँद हू न हाथ लगै,
दूरसों दिखात मृगतृष्णिका मे पानी है।
"शंकर" प्रमाण-सिद्ध रग को न संग पर,
जान पड़ै अबर में नीलिमा समानी है॥
भाव मे अभाव है अभाव में धौं भाव भरयो,
कौन कहै ठीक बात काहू ने न जानी है।
जैसे इन दोउन में दुविधा न दूर होत,
तैसे तेरी कमर की अकथ कहानी है'॥

जनाब "अकबर" ने भी अपने खास रग मे कमर की कायनात बयान करने मे कमाल किया है, क्या खूब फर्माया है।

कही देखा न हस्ती वो अदम का इश्तराक ऐसा।
जहाँ मे मिस्ल रखती ही नहीं उनकी 'कमर' अपना।
'जो पूछा नेस्ती हस्ती मे क्यों कर फर्क जाहिर हो।
'कमर' ने यार की ईमा किया मै हद्दे-फासिल हूँ॥'
जगत जनायो जिहिं सकल सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये आँखि न देखी जाहिं॥

यह सब जगत् (जिसकी सत्ता से स्थित और) जिसके प्रकाश से प्रतिभासित हो रहा है अपनी माया से रचकर जो इसे दिखा रहा है वह स्वय 'अज्ञेय' ह, नही जाना जाता, नही दीख पडता। आँख से सब कुछ देखा जाता है सबको आँख से देख सकते है पर स्वय आँख (अपने आपको) नही दीखती। आँख को आँख से नही देख पाते।

कितनी पते की बात कही है, कैसा सुन्दर दृष्टान्त है। यह जितना सहज और सरल है उतना ही विगूढ दार्शनिक रहस्य इसमें छिपा है इसकी व्याख्या म बहुत कुछ कहा जा सकता है।

भक्ति-मार्ग

बिहारीलाल जिस प्रकार ज्ञानमार्गगामी थे इसी प्रकार भक्ति पथ के प्रवीण पथिक थे। इसके भी दो चार दोहे सुन लीजिये। कैसे नावक के तीर है।

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाव ॥
तरु संसार पयोधि कौं, हरि नामै करि नाव ॥

कैसा अच्छा रूपक बाँधा है, और कितनी सच्ची बात कही है। हरि नाम की नाव बना और जयमाला की पतवार पकड़—बस इस ससार-समुद्र को तर जा, और कोई उपाय पार उतरने का नही है।

तौ लगि या मन-सदन मे हरि आवहिं किहि बाट।
निपट बिकट जब लगि जुटे, खुलहिं न कपट-कपाट ॥

कितनी मनोहर रचना है, कर्ण, कटु टकार की बहार इस जगह कितनी श्रुति मधुर मालूम दे रही है। कपटी भक्त को क्या फटकार बतलाई है।

जब तक कपट के विकट किवाड जुटे है, तब तक मन रूप मन्दिर मे हरि किस रास्ते से आवे। जरा सोचो तो, लोहे के फाटक से मकान को मजबूती के साथ बद कर रक्खा है और चाहते हो कि कोई भला आदमी उसके अदर पहुँचकर तुम्हे कृतार्थ करे।

'ई खयालस्तो महालस्तो जनूँ'
जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा साँचे राँचे राम ॥

इस दोहे के दड-प्रहार ने भड-भक्ति का भाँडा फोड दिया है।

दूरि भजन प्रभु पीठ दै, गुन विस्तारन काल।
प्रगटत निरगुन निकट हि, चग रँग गोपाल ॥

बिलकुल नई बात कही है। साकार या सगुण के उपासक, निराकार या निर्गुण के उपासको पर ताना मारा करते है कि निर्गुण को उपासना हो ही नही सकती। विहारी कहते है कि गुण विस्तार करने के—सगुण रूप की उपासना के—समय प्रभु पीठ देकर दूर भागते है।

उसके गुण अनन्त है कोई पार नही पा सकता, फिर कोई सगुणोपासक उसे क्षीरसागर मे ढूँढता है, कोई बैकुठ मे खोजता है, कोई कैलाश पर, और कोई और कही। पर निर्गुणोपासना मे वह पास ही प्रकट हो जाता है जहाँ ध्यान करो वहाँ उसकी प्राप्ति सुलभ है चग की—पतग की—डोरी को जितना ही बढाओ उतना ही पतग ऊपर जाता है—डोरी (गुण) काट दो तो पास

ही आ पडता है । 'चग रग' चग की तरह । कोई इसका अर्थ यह भी कहते हैं कि गुण-विस्तार काल में—सत्व रजस्तमो-लक्षण-गुणविशिष्ट पुरुषो से वह (ईश्वर) दूर रहता है, और जो निर्गुण है—गुणातीत है—उनके निकट में ही प्रकट हो जाता है । जैसा कि भगवद्गीता में कहा है—

गुणानेतानतीत्यत्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।
जन्म-मृत्यु-जरा-दुखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

पर इस अर्थ में चग रग की सगति विगड जाती है ।

थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि ।
तुमहूँ कान्ह मनौ भये, आज काल के दानि ॥

बडी 'शोखी' है । 'दान' कहते हैं नट के ढोलिया को । नट बढिया से बढिया तमाशा दिखाता है—जान पर खेलकर एक से एक कठिन कला करके दिखाता है पर ढोलिया ढोल पर डका मारकर बराबर यही कहता रहता है 'कि यह कला भी नही बदी, यह भी नही बदी ।'

भक्त ईश्वर से कहता है कि पहले तुम थोडे से गुण पर रीझ जाते थे—झूठ-मूठ भी किसी के मुँह से तुम्हारा नाम निकल गया तो उसका बेडा पार लगा दिया । पर अब हम नाना प्रकार की भक्ति से—अपने अनेक सद्गुण सपादन करके–तुम्हे रिझाना चाहते है, पर तुम रीझते । नही मालूम होता है कि तुम भी नट के ढोलिया बन गये हो । हमारी प्रत्येक प्रार्थना, उपासना, भक्ति और सत्कर्म पर 'यह भी नही वदा' कहकर उपेक्षा कर रहे हो ।

अथवा आजकल के दानी जिस तरह दान पात्र (याचक) मे सौ मीन मेख निकाल कर—तुममें यह बात तो अच्छी है, पर इतनी कसर है, इसलिए हमारी सहायता के तुम पात्र नही हो, इत्यादि बहाना करके दान-पात्र को कोरा टाल देते है, ऐसा ही बर्ताव तुम अपने दीन भक्तो के साथ करने लगे हो ।

कबको टेरत दीन रट होत न स्याम सहाय ।
तुमहूँ लागी जगत्-गुरु जगनायक जगबाय ॥

ससार वडा स्वार्थी है । यहा कोई दीन-दुखी के करुण-क्रन्दन पर कान नही देता । इसी ससार की हवा, मालूम होता है, 'हे जगत् गुरु 'जग नायक' श्याम ! तुम्हे भी लग गई । तभी इतने बेपीर हो गये हो ।'

पाँचवाँ भाग :: श्रद्धाञ्जलि

साहित्य-महारथी पं० पद्मसिंह शर्मा की स्मृति में

लेखक : श्री महावीर अधिकारी

प्रत्येक वर्ष को ७ अप्रैल आती है और हिन्दी के साहित्यकार प्रचलित परम्परा के बहाने पण्डित पद्मसिंह शर्मा का नाम भी उसी तरह स्मरण कर लेते है, जिस प्रकार अनेक महापुरुषो का नाम अनेक दिशाओ मे लिया जाता है। पडित पद्मसिंह शर्मा ने प्रकाण्ड पाडित्य, अध्यवसाय और ओजस्विता से हिंदी को जो दिया था, उसका महत्त्व द्विवेदी युग के रचना-काल मे शायद किसी से भी कम नही है। आज यद्यपि आलोचना शैली, भाषा और वस्तु की दृष्टि से हिंदी-साहित्य द्विवेदी-काल से बाँधकर नही रखा जा सकता, न ही उस समय के साहित्यिक आदर्श आज हमारे युग के सही आदर्श बन सकते है, लेकिन द्विवेदी युग के आलोचको और निबन्ध-लेखको में इतने विराट व्यक्तित्व वाले समालोचक इने-गिने ही मिलेगे जिन्होने हिंदी की सम्पूर्ण दिशा को प्रभावित किया। यदि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और बाबू श्यामसुन्दरदास ने हिंदी को एक वैज्ञानिक आलोचना-पद्धति दी और पश्चिम के साहित्यिक मतवादो की शुद्ध विवेचनापूर्ण टीका करते हुए हिंदी के लिए उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि को सामने रखकर एक वैज्ञानिक आलोचना-पद्धति, इतिहास-लेखन और गवेषणात्मक साहित्य दिया तो पडित पद्मसिंह शर्मा ने भी सस्कृत, फारसी, उर्दू और अरबी साहित्य का अवगाहन करके भाषा को जो व्यजना-शक्ति प्रदान की है, वह अनुपम है। खडी बोली को जो रवानी, जो जिन्दगी और जीवन से निकटता प्राप्त करने की क्षमता मिली, उसमे पडित पद्मसिंह का सर्वोपरि स्थान है।

वरन् यह कहा जाय कि शर्मा जी ने जो दिशा-निर्देश किया, उसे रचनात्मक रूप भी दिया। उनके द्वारा लिखे गए विनोद, समालोचनाएँ, शब्द-चित्र और सम्पादकीय टिप्पणियाँ आज भी उनके मिशनरी जीवन की याद ताजा कर देते है। उनमे जीवन से इतनी निकटता थी कि वर्ण्य विषय के अतिरिक्त लेखक

भी कल्पना-लोक मे अपनी सम्पूर्ण वैयक्तिक विशेषताओ सहित घूमता-फिरता प्रतीत होने लगता है। उनके प्रोत्साहन से और शुद्धियो के आधार पर आज से २५-३० वर्ष पूर्व जो नवयुवक साहित्य-सृजन की ओर अनुप्रेरित हुए थे उनमे से अनेक हिंदी साहित्य के महान् सर्जको का सम्मान प्राप्त कर चुके है। पडित पद्मसिंह शर्मा के प्रकाशित साहित्य के अतिरिक्त और कितना ही साहित्य ऐसा पडा है, जिसकी अभी ठीक प्रकार से खोज नही हुई। यह भी वास्तव में आश्चर्य का विषय है कि उनकी अपेक्षा बहुत कम महत्व के साहित्यकारो पर काफी काम हुआ है। विश्वविद्यालियो ने अनेक कम महत्व के लेखको को खोज और विशेष अध्ययन का विषय स्वीकार कर लिया है, लेकिन शर्मा जी की ओर किसी का भी ध्यान नही जाता।

भारतीय लक्षण-ग्रथो का इतना प्रकाड और प्रामाणिक पडित उनके जीवन मे तो क्या अब तक भी हिंदी साहित्य मे पैदा नही हुआ। सस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी के गम्भीर अध्ययन से उन्होने हिन्दी को एक विराट् दृष्टि और व्यापक अनुभूति प्रदान की थी। शायद वह हिन्दी के पहले आलोचक थे जिन्होने 'बिहारी-सतसई' के भाष्य के रूप मे एक उदार एव विराट् साहित्य-देवता की प्रतिष्ठा की और आज अगर वह जीवित होते तो हिंदी मे एक महान् आचार्य पद पर आसीन ही नही होते बल्कि युगानुकूल साहित्य-मर्यादा की स्थापना करते। खेद का विषय है कि हिंदी के लिखित इतिहासो मे पडितजी पर कोई भी प्रामाणिक चर्चा कही भी पढने को नही मिलती। इसका कारण कुछ भी रहा हो, परन्तु इतना अवश्य हम कह सकते है जिन छुटभइयो की प्रतिभा उनके जीवन-काल मे उनके सम्मुख कुछ छोटी सिद्ध होती थी, उन्होंने अपनी लम्बी आयु का लाभ उठाया और उनकी मृत्यु के बाद उनसे बदला इस प्रकार लिया कि साहित्य-मन्दिर से उनकी मूर्ति ही तोर कर दी।

इस सदर्भ मे शर्माजी के समर्थ शिष्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदीजी का नाम भूलना उनकी सेवाओ के प्रति अकृतज्ञता होगी। केवल वे ही अकेले साहित्यिक है, जिन्होने बार-बार हिंदी जगत् का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया। शर्मा जी ने अपने जीवन-काल मे जिन साहित्य-सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया, उन्हे उनकी असाधारण कर्मठता मे उनके जीवन-काल में ही इतने व्यापक रूप से प्रतिष्ठा मिली, किन्तु इतना लिखने के उपरान्त भी उनकी चर्चा अधिक नहीं सुन पडती। हमें विश्वास है कि इस युग का इतिहासकार जब हिंदी का इतिहास लिखने के लिए लेखनी उठायगा तो शर्मा जी के साहित्यिक अनुदान का मूल्य सही-सही आँकेगा।

सुहृद्वर

याते दिव त्वयि सुहृद्वर पद्मसिंह
तत्रैव सा रसिकतापि गतैव मन्ये।
क्वाहं भवादृशमनन्त सुभाषितज्ञं
प्राप्स्ये हतेन विधिना बहु वञ्चितोऽस्मि।
सस्मृत्य तेऽद्य सरसञ्च कथा कलाप
सत्य वदामि हृदय शतधा प्रयाति।
आर्तस्य निर्गृत धृतेर्मम शोक शान्त्यै
त्वत्सन्निधौ गमनेव विनिश्चिनोमि॥

दौलतपुर
२१ जुलाई १९३२ }

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी का अमर काव्य

रामचरित-मानस

टीकाकार

श्री पं० रामनरेश त्रिपाठी

द्वितीय सस्करण

रामचरित-मानस की आज तक की टीकाओं मे श्री पं० रामनरेश त्रिपाठी की टीका ने बहुत सम्मान प्राप्त किया है । उसके प्रकाशित होते ही प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं मे कुछ ये हैं :—

- ◇ प्रारम्भ मे तीन सौ पृष्ठों की मौलिक भूमिका ।
- ◇ प्रामाणिक और शुद्ध मूल पाठ ।
- ◇ टिप्पणियों मे कठिन शब्दार्थ ।
- ◇ आकर्षक और कला पूर्ण चित्र ।
- ◇ सुन्दर और मनमोहक छपाई ।

हमे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि अब रामचरित-मानस तथा त्रिपाठी जी द्वारा लिखित और सम्पादित अन्य समस्त साहित्य हमारे यहां से प्रकाशित हो रहा है ।

हिन्दी पुस्तकों का अनुपम संग्रह

हिन्दी के उच्चकोटि के सभी कवियों, नाटककारों, आलोचकों, उपन्यास-कारों तथा अन्यान्य विषयों के प्रसिद्ध और प्रामाणिक विद्वानों की साहित्यिक कृतियों का संग्रह हमारे यहा है । हिन्दी की सभी परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकें हमारे यहा उपलब्ध हो सकती हैं । आपको किसी भी हिन्दी पुस्तक की आवश्यकता हो तो निम्नलिखित पते पर मिलिये या पत्र लिखिये :—

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

काश्मीरीगेट, दिल्ली

पोस्ट बाक्स नं० १४२६

रामलाल पुरी द्वारा यूनिवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस दिल्ली मे मुद्रित